DOI: 10.51220/hjssh.v9i1.3

Himalayan J. Soc.Sci. & Humanities Vol- 9 pp.21 - 23, December, 2014, ISSN. 0975 - 9891

उपनिषदों में वर्णित प्रमुख दार्शनिक सिद्धान्त

कुसुम डोबरियाल

संस्कृत विभाग

हे0न0ब0 गढ़वाल विश्वविद्यालय (केन्द्रीय विश्वविद्यालय) पौड़ी गढ़वाल 246001

Received: 12.09.2014 Revised: 22.10.2014 Accepted: 19.12.2014

ABSTRACT

उपनिषद् भारतीय संस्कृति के प्राणस्वरूप हैं। इसी से भारतीय संस्कृति को 'आर्य-संस्कृति' भी कहा जाता है। समस्त वेदों का चरमसत्य उपनिषदों में ही प्राप्त होता है। उपनिषदों में दार्शनिक तत्वों व सिद्धान्तों का विवेचन श्रेष्ठतम रूप से विद्यमान है। मानव की दार्शनिक जिज्ञासा को शांत करने एवं सत्य को जानने में समर्थ अनेक ऐसे मौलिक विचारों एवं उपदेशों का मूल स्त्रोत उपनिषद ग्रन्थों में प्राप्त होता है। उपनिषदों में वर्णित मुख्य दार्शनिक सिद्धान्तों की विवेचना करना प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य विषय है।

KEYWORDS- उपनिषद्, दार्शनिक सिद्धान्त।

उपनिषद् वैदिक साहित्य के अन्तिम भाग हैं। शाब्दिक व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'उपनिषद' शब्द 'उप और नि' उपसर्ग लगाकर 'सदृल' धातु से बना है। 'सदृल' धातु का प्रयोग तीन अर्थों में हुआ है-

1. अवसादन अर्थात् शिथिल होना।
2. गति अर्थात् जानना या प्राप्त करना।
3. विशरण अर्थात् नष्ट होना।

व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'उपनिषद' शब्द का अर्थ हुआ-वह विद्या जो संसार के बंधन को पूर्णत: शिथिल कर देती है अथवा जो आत्मा की प्राप्ति कराती है अथवा जो अज्ञान का सम्पूर्ण नाश करती है। एक दूसरी व्युत्पत्ति 'उपनिषद' शब्द के अर्थ को एक रहस्यमयी विद्या या ब्रह्म ज्ञान जो गुरू के समीप बैठकर प्राप्त किया जाता है, संकेत करती है। सम्भवत: 'उपनिषद' को 'गुह्यज्ञान' इसी दृष्टि से कहा गया है-

1. इमं परमं गुह्यम् (कठोपनिषद-3।17)[1]
2. गुह्य: आदेश: (छान्दोग्योपनिषद 3।5।2)[2]

वेदों का अन्तिम भाग होने के कारण इनको 'वेदान्त' के नाम से भी जाना जाता है। उपनिषदों में 'ईशादि' ग्यारह उपनिषद् मुख्य व प्राचीनतम एवं प्रमाणिक माने जाते हैं। इन पर आचार्य शंकर ने अपना भाष्य लिखा है। वेद की प्रत्येक संहिता व शाखा की दृष्टि से उपनिषदों की संख्या 108 से भी अधिक मानी गयी है। प्राचीनतम एवं प्रामाणिक उपनिषदों के मुख्य नाम निम्न हैं-

1. ईशोपनिषद्, 2. केनोषनिषद्, 3. कठोपनिषद्, 4. प्रश्नोपनिषद्, 5. मुण्डकोपनिषद्, 6. माण्डूक्योपनिषद्,

©SHARAD

7. तैतरीयोपनिषद्, 8. ऐतरेयोपनिषद्, 9. छान्दोग्योपनिषद्, 10. वृहदारण्यकोपनिषद्, 11. श्वेताश्वतरोपरिषद्, 12. कौषीतकी उपनिषद्, 13. मैत्रायणी उपनिषद्, 14. महानारायणी उपनिषद्

भारतीय दर्शन के मूलभूत बीज ऋग्वेदादि संहिताओं में पाये जाते हैं, किन्तु भारतीय दर्शन का जो स्वरूप दिखलाई देता है वह उपनिषदों में पूर्णरूपेण दृष्टिगोचर होता है। उपनिषदों में निम्न दार्शनिक तत्वों का विवेचन इस प्रकार हुआ है-

ब्रह्म-'वृह्' (व्यापक होना) धातु से 'ब्रह्म' शब्द की निष्पति हुई है। अर्थात सभी ओर व्याप्त होने वाला। ऋग्वेद में 'ब्रह्म' 'ऋचा', अर्थ एवं अथर्ववेद में-'उपचार मंत्र' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। वेदरूपी ब्रह्म से यज्ञरूप-सृष्टि हुई अत: 'ब्रह्म' को सृष्टि रचयिता या ब्रह्मा भी माना गया है। उपनिषदों में 'ब्रह्म' को सृष्टिकर्ता, शाश्वत व सर्वव्यापी कहा गया है। शांकर भाष्य, ब्रह्मसूत्र-'कठोपनिषद् के प्रथम अध्याय तृतीय वल्ली में 'ब्रह्म' के (1।1।2) में ब्रह्म के स्वरूप की विवेचना की गई है। स्वरूप को निम्नवत् श्लोक में निरूपित किया गया है-

अशब्दमस्पर्श मरूपमव्ययं तथारसं नित्यगन्धवच्च यत्।
अनाद्यनन्तं महत: परं ध्रुवं निचाटय तन्मृत्युमुखात्प्रभुच्यते।। 15।। (कठोपनिषद्)[3]

तैतिरीयोपनिषद में ब्रह्म का स्वरूप-'येता वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवान्ति, यत् प्रयन्त्यभिंसविशन्ति, तद् ब्रह्मेति'। (3।9) तै0 की भुगुवल्ली में ब्रह्म से सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं व उत्पन्न हुए प्राणी जिसके द्वारा जीवित रहते हैं और अन्त में वे सभी उसी ब्रह्म में प्रवेश कर जाते हैं। यह स्पष्ट रूप से उल्लिखित है।

आत्मा-आत्मा का शब्दिक अर्थ है-प्राण, 'अन्' (प्राणेन) धातु से 'आत्मा' शब्द की सिद्धि होती है। शांकर भाष्य के द्वारा आत्मा के स्वरूप को कठोपनिषद में निम्न श्लोक में वर्णित किया गया-

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न वभूव कश्चित्।
अजो नित्य: शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।। (9।2।18)[4]

गीता के इस भाव को दूसरे अध्याय के बीसवें श्लोक में इस प्रकार व्यक्त किया गया है-

न जायते म्रियते वा कदानिन्नायं भूत्वा भविता व न भूप:।
अजो नित्य: शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।। (2।20)[5]

इस प्रकार उपनिषदों में आत्मा को अज, नित्य, व शाश्वत कहा गया है।

आत्मा व ब्रह्म-उपनिषदों का प्रमुख विषय 'आत्मविवेचन' है। 'कठोपनिषद' इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कृति है। इसमें आत्मा के स्वरूप विवेचन के साथ-साथ ब्रह्मज्ञान या आत्मज्ञान पर विस्तृत विवेचन किया गया है। ब्रह्म प्राप्ति का आनन्द ही चरम और स्थायी आनन्द है। यह उपदेश यम द्वारा नचिकेता को दिया गया है। संहिताओं और ब्राह्मण ग्रन्थों में ब्रह्म और आत्मा को पृथक-पृथक अर्थों में प्रयोग किया गया है, किन्तु उपनिषद ग्रंथों में दोनो एक ही अर्थ के रूप में प्रयुक्त किये गये हैं। आत्मा व परमात्मा एक है। निम्न उपनिषदों में आत्मा और ब्रह्म की एकता को उल्लिखित किया गया है-

1. अयमात्मा ब्रह्म (अहं ब्रह्मास्मि) वृहदारण्यकोपनिषद् (2।5।19)
2. तत्वमसि (छान्दोग्योपनिषद्)
3. माण्ड्क्योपनिषद में भी इस दृश्यमान जगत को ब्रह्म की संज्ञा दी गई है और पुन: आत्मा को ही ब्रह्म कह दिया गया है।

(माण्ड्क्योपनिषद्-(आत्मैव संविशत्यात्मनाऽऽत्मानंम्)

इस प्रकार उपनिषदों के अनुसार सम्पूर्ण जगत ब्रह्म का ही एक रूप है।

आत्मा का पुनर्जन्म-भारतीय दर्शन के अनुसार पुनर्जन्म की मान्यता को हमारे उपनिषदों ने भी स्वीकार किया है। कठोपनिषद के द्वितीय अध्याय की द्वितीय वल्ली में आत्मा का कर्म व ज्ञान के अनुसार पुनर्जन्म होता है, यह सुस्पष्ट है-

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिन:।

स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्।।9।।

भारतीय दर्शनानुसार मनुष्य अपने अच्छे और बुरे 'कर्मो' के अनुसार जन्म लेता है और जन्म लेने के पश्चात उसे पुन: अच्छे व बुरे कर्म करने होते हैं। इसी कारण मनुष्य जन्म मृत्यु के बंधन से मुक्त नहीं हो पाता। 'वृहदारण्यकोपनिषद में स्पष्ट कहा गया है कि मनुष्य अपने संचित कर्मो के द्वारा नवीन जन्म लेता है। मनुष्यों में जो तत्वज्ञानी हैं, वे देवलोक और सूर्यलोक को प्राप्त कर ब्रह्मलोक में चले जाते हैं और मोक्ष प्राप्त करते हैं।''

इसके विपरीत वेदविहित कर्मो को करने वाले पितृलोक होकर इन्द्रलोक प्राप्त कर पुण्यों के क्षीण होने पर पुन: मृत्युलोक में जीवन को प्राप्त करते हैं अथवा पुनर्जन्म लेते हैं (छठवां अध्याय) भाव यह है कि जो जीवात्मायें अज्ञानयुक्त हैं (वृहदारण्यकोपनिषद्) मुक्त नहीं होती, उनमे कुछ अपने कर्मो तथा ज्ञान के अनुसार मनुष्य या पशु का जंगम शरीर धारण करने के लिए गर्भ में प्रवेश करती हैं, और कुछ वृक्ष आदि वनस्पतियों का स्थावर शरीर प्राप्त कर लेती हैं।

अन्तत: कहा जा सकता है कि उपनिषदों में भी पुनर्जन्म की अवधारणा को स्वीकार गया है।

मोक्ष-कैवल्य की प्राप्ति ही परमपद की प्राप्ति कही गई है। वैदिक मतानुसार 'सब प्रकार के बन्धनों से छूट जाना ही मुक्ति है। प्रकृतिजन्य शरीर आदि के बंधन से या जन्म मरण के चक्र से वियुक्त होना ही मोक्ष का तात्पर्य है। चार पुरूषार्थो में परम नि:श्रेयस रूप मोक्ष ही मनुष्य का अंतिम लक्ष्य है। यह सुनिश्चित है 'कठोपनिषद' में द्वितीय अध्याय की तृतीय वल्ली में मोक्ष किस प्रकार प्राप्त हो सकता है, स्पष्ट है-

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।

बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहु: परमां।।90।।6

अर्थात् जब मन सहित पांचो ज्ञान (इन्द्रियां) रूक जाते हैं और बुद्धि चेष्टा नहीं करती, उसको परम गति अर्थात मोक्ष की स्थिति कहा जाता है। जब इन्द्रिय और बुद्धि दोनों विषयों के प्रति अनासक्त हो जाते हैं तब वे आत्मा में केन्द्रित हो जाते हैं और मनुष्य मोक्ष की स्थिति को प्राप्त कर लेता है। सभी उपनिषदों में परम पद को प्राप्त कर मनुष्य ब्रह्मरूप हो जाता है। यह ज्ञानात्मक व्याख्या सुस्पष्ट है।

उपनिषदों में दार्शनिक तत्वों का विवेचन श्रेष्ठतम रूप से विद्यमान है। ब्रह्म, जीव, जगत, मोक्ष आदि विषय उपनिषदों के प्रमुख विषय हैं। अन्तत: कहा जा सकता है कि उपनिषद जीव को अल्पज्ञान से अनन्तज्ञान की ओर ले जाने वाले एवं दार्शनिक ज्ञान के मूल स्त्रोत हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. कठोपनिषद - 3/17
2. छान्दोग्योपनिषद- 3/5/2
3. कठोपनिषद- 1/3/15
4. कठोपनिषद- 1/2/18
5. गीता- 2/20